ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 144-147
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-17, No.- I, Issues-31, YEAR- Jan.-March-2024

भूगोल में मात्रात्मक क्रांति का योगदान

विजय प्रताप

सहायक प्रोफेसर– भूगोल विभाग, श्री चित्रगुप्त पी.जी. कॉलेज, मैनपुरी (उ0प्र0) भारत

Received-04.03.2024, Revised-11.03.2024, Accepted-07.03.2024 E-mail: sanjaychau01@gmail.com

सारांश: ***प्रत्यक्षवाद से प्रेरित होकर द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त भूगोल में सांख्यिकी एवं गणितीय विधियों के त्वरित अनुप्रयोग के साथ ही भूगोल के विषय वस्तु में त्वरित परिवर्तन को भौगोलिक जगत में मात्रात्मक क्रांति के नाम से जाना जाता है। इसकी शुरुआत 1950 के दशक में हुई, जो कई चरणों में विकसित होते हुए 1978 – 79 तक अपने विकास के चरम पर पहुँच गई। इसके बाद भूगोल में मात्रात्मक क्रांति का प्रभाव कम होने लगा। मात्रात्मक क्रांति की आलोचना करते हुए भूगोल में व्यवहारवादी, उग्र सुधारवादी, मानववादी, कल्याणवादी आदि उपागमों/विधितंत्रों का उदय आलोचनात्मक क्रांति के रूप में हुआ। परंतु मात्रात्मक क्रांति के परिणामस्वरूप भूगोल ने वर्णनात्मक की जगह वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक स्वरूप ग्रहण किया। इसके कारण भूगोल में भी मॉडल, सिद्धांतों एवं नियमों का निर्माण और परिकल्पनाओं का निरीक्षण किया जाने लगा। इसके फलस्वरूप भूगोल में अनुमान लगाना और भविष्यवाणी करना भी आसान हो गया।***

कुंजीभूत शब्द– व्यवहारवादी, उग्र सुधारवादी, मानववादी, कल्याणवादी, उपागमों, विधितंत्रों, आलोचनात्मक क्रांति, मात्रात्मक क्रांति।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भूगोल के अध्ययन में गुणात्मक विधियों के स्थान पर मात्रात्मक विधियों यॉनि सांख्यिकीय एवं गणितीय विधियों, सिद्धांतों एवं मॉडलों के अनुप्रयोग से भूगोल के विधितंत्र एवं विषयवस्तु में त्वरित परिवर्तन हुआ, जिसके फलस्वरूप भूगोल में वर्णनात्मकता एवं व्यक्तिनिष्ठता के स्थान पर वैज्ञानिकता, तर्क एवं वस्तुनिष्ठता का आगमन हुआ। इन संपूर्ण गतिविधियों को मात्रात्मक क्रांति से संबोधित करते हैं। मात्रात्मक क्रांति के दौरान भूगोल के अध्ययन में साहित्यिक भाषा की अपेक्षा गणितीय भाषा को महत्त्व दिए जाने लगा। परिणामस्वरुप भूगोल में आनुभविक वर्णनात्मक दृष्टिकोण के स्थान पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए सिद्धान्तों एवं मॉडलों के निर्माण पर बल दिया जाने लगा। मात्रात्मक क्रांति शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम आई बर्टन द्वारा 1963 में अपने एक शोध पत्र 'द क्वांटिटेटिव रिवोल्यूशन एंड थ्योरिटिकल जियोग्राफी' में किया गया।

भौगोलिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि– द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व भूगोलवेत्ताओं द्वारा आनुभविक वर्णनात्मक विधितंत्र का प्रयोग किया जाता था, जिसमें परिणामों की विश्वसनीयता संदिग्ध होती थी क्योंकि एक ही विषय–वस्तु पर अलग–अलग भूगोलवेत्ताओं द्वारा अलग–अलग परिणाम एवं निष्कर्ष निकाले जाते थे यानी परिणामों में लचीलापन था। परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भूगोल को एक ऐसे विधितंत्र की आवश्यकता थी जिससे परिणामों की विश्वसनीयता सुदृढ़ एवं सुनिश्चित हो सके।

1950 एवं 1960 के दशक में प्रत्यक्षवाद का भूगोल पर गहरा प्रभाव पड़ा। 1953 में शेफर द्वारा हेटनर–हार्टशोर्न द्वारा प्रचलित अपवाद–पोषक 'क्षेत्रीय विभिन्नता की संकल्पना' की आलोचना के पीछे प्रत्यक्षवाद का बढ़ता प्रभाव ही था। उल्लेखनीय है कि 1950 के दशक में भूगोल के अध्ययन के विधितंत्र को लेकर भूगोलवेत्ता दो वर्ग में बंटे हुए थे। एक वर्ग का नेतृत्व रिचर्ड हार्टशोर्न कर रहे थे जो 'इडियोग्राफिक उपागम' के समर्थक थे, जबकि दूसरे वर्ग का नेतृत्व शेफर कर रहे थे जो 'नोमोथेटिक उपागम' के समर्थक थे। इडियोग्राफिक उपागम के तहत हार्टशोर्न ने कांट और हेटनर के विचारधारा को आगे बढ़ाते हुए यह कहा कि भूगोल एक अपवाद विषय है, यह एक विशिष्ट विषय है। अतः इसके अध्ययन की विधियाँ शेष विज्ञानों के विधियों से अलग होंगी। इस वर्ग के भूगोलवेत्ताओं का मानना है कि भूगोल का अध्ययन 'क्षेत्रीय विभिन्नता' के आधार पर किया जाना चाहिए। प्रत्येक प्रदेश अपने आप में विशिष्ट होता है। चूंकि सभी प्रदेशों की भौगोलिक परिस्थितियां अलग अलग होती है, अतः किसी भी प्रदेश को संपूर्णता से समझने के लिए उस प्रदेश के सभी भौगोलिक तत्वों का वर्णन करते हुए उसका विशिष्ट अध्ययन करना होगा।

परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद दुनिया आर्थिक पुनर्स्थापना पर अधिक जोर दे रही थी। उस दौरान अन्य सामाजिक विज्ञानों की तरह भूगोल में भी परिणामों की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिन्ह लगने लगा क्योंकि भूगोल में इडियोग्राफिक उपागम के तहत किसी स्थान या प्रदेश की विशेषताओं का किया गया वर्णन व्यक्तिनिष्ठ होता था और उसमें वैज्ञानिकता का अभाव था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद दुनिया को भूगोल में भी ऐसे विषयवस्तु की जरूरत थी जिसमें कार्य–कारण सिद्धांत के अनुसार चीजें बतायी गयीं है यॉनि गणितीय, सांख्यिकीय और तार्किक विधियों के द्वारा आंकड़ों की मदद से यह बताया गया हो कि "यदि ऐसा किया जाए, तो ऐसा होगा।" उस दौरान 1949 में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रिस्टन विश्वविद्यालय में विश्व के सामाजिक वैज्ञानिकों का एक सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में अन्तर्विषयक वार्ताओं के बाद सामाजिक विज्ञान के सभी विषयों को अपनी विश्वसनीयता एवं वैज्ञानिकता को बढ़ाने के लिए मात्रात्मक विधितंत्र को अपनाने की सलाह दी गई।

इस सम्मेलन के उपरांत भूगोल में कुछ भूगोलवेत्ताओं ने मात्रात्मक विधितंत्र को अपनाना शुरू कर दिया। भूगोल में इसकी शुरुआत का श्रेय अमेरिकी भूगोलवेत्ता जिफ को जाता है, जिन्होंने 1949 में अपने एक रिसर्च पेपर 'ह्यूमन विहैवियर्स एंड द प्रिंसिपल ऑफ लिस्ट एफर्ट' में नगरों के 'कोटि–आकार नियम' की व्याख्या की थी, परन्तु भूगोल में मात्रात्मक क्रांति की वास्तविक नींव तब पड़ी, जब 1953 में शेफर का एक रिसर्च पेपर 'भूगोल में अपवादवाद' प्रकाशित हुआ। इसमें शेफर ने हार्टशोर्न के अपवादवाद का विरोध करते हुए यह आरोप लगाया कि हार्टशोर्न द्वारा भूगोल के अध्ययन में इडियोग्राफिक उपागम अपनाए जाने से यह केवल एक आनुभविक वर्णनात्मक विषय ही बनकर रह गया है। दूसरे शब्दों में, भूगोल की कोई व्यावहारिक उपयोगिताअहत्त्व नहीं रह गई है बल्कि यह भौगोलिक तत्वों

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-17, No.- I, Issues-31, YEAR- Jan.-March-2024

का वर्णनमात्र बनकर रह गया है। अतः भूगोल के इस विधितंत्र द्वारा उद्योगों की अवस्थापना, नगरों का विकास, नियोजन आदि संबंधित प्रश्नों का जवाब मिल पाना संभव नहीं हो पा रहा था। अतः भूगोल के अध्ययन के लिए 'नोमोथेटिक उपागम' अपनाने की जरूरत है ताकि किसी स्थान या क्षेत्र के भौगोलिक तत्वों एवं परिघटनाओं के पीछे के कारणों को नियमों, सिद्धांतों और मॉडलों के माध्यम से समझाया जा सके। अतः भूगोल के अध्ययन में नोमोथेटिक उपागम के अंतर्गत स्थान या क्षेत्र के ऊपर दिखने वाली अलग–अलग विशेषताओं को समझाने के लिए विभिन्न प्रकार के आंकड़ों को लेकर गणितीय एवं सांख्यिकीय विधियों की मदद से सिद्धांतों, नियमों एवं मॉडलों का निर्माण किया जाता है। और इन नियमों एवं मॉडलों के माध्यम से किसी स्थानध्क्षेत्र पर घटित भिन्न–भिन्न भौगोलिक घटनाओं को समझाने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार शेफर आदि के द्वारा प्रस्तुत उक्त तर्कों के बाद भौगोलिक शोधों एवं भौगोलिक अध्ययनों में मात्रात्मक विधियों का इस्तेमाल शुरू हो गया। यहीं से मात्रात्मक क्रांति की नींव पड़ी और साथ ही, मात्रात्मक क्रांति ने भूगोल का आधार 'स्थानिक विज्ञान' (चंजपंस बपमदबम) बना दिया।

मात्रात्मक क्रांति के उद्देश्य–

1. भूगोल को इसके आनुभविक वर्णनात्मक चरित्र को परिवर्तित करके इसे एक वैज्ञानिक विषय बनाना।
2. भौगोलिक तथ्यों के स्थानिक प्रतिरूपों को तार्किक एवं वस्तुनिष्ठ ढंग से समझाना एवं उसकी व्याख्या करना। भूगोल में मॉडल, नियम आदि का निर्माण इसीलिए किया जाता है ताकि भूगोल को अधिक से अधिक वस्तुनिष्ठ एवं तार्किक बनाया जा सके।
3. भूगोल में साहित्यिक भाषा के स्थान पर गणितीय भाषा का उपयोग करना। दूसरे शब्दों में, भूगोल में गणितीय एवं सांख्यिकीय विधियों का अधिक से अधिक उपयोग करना भी मात्रात्मक क्रांति का एक उद्देश्य था।
4. धरातल पर दिखने वाले अवस्थितीय वर्ग (locational order) के लिए एक सामान्य नियम बनाना (सामान्यीकरण)।
5. परिकल्पना का परीक्षण करने, अनुमान लगाने और भविष्यवाणी करने के लिए प्रतिमानों (models), सिद्धांतों एवं नियमों का निर्माण करना।
6. भूगोल को ठोस दार्शनिक एवं सैद्धांतिक आधार प्रदान करना ताकि इसे एक वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक विषय बनाया जा सके।
7. विभिन्न आर्थिक क्रियाओं के लिए आदर्श अवस्थितियों की पहचान करना ताकि उच्चतम लाभ प्राप्त हो सके।

पूर्वमान्यताएँ

मात्रात्मक क्रांति के अंतर्गत निर्मित किए जाने वाले प्रतिमानों, सिद्धांतों या नियमों आदि के निर्माण से पूर्व कुछ मान्यताएँ स्वीकार कर ली जाती हैंय यथा–

1. मनुष्य एक आर्थिक (विवेकी) व्यक्ति है जो सदैव अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करता है।
2. मनुष्य को अपने स्थान (space) (पर्यावरण एवं संसाधन के परिप्रेक्ष्य में) का संपूर्ण ज्ञान होता है।
3. स्थान (space) समदैशिक (isotropic) है यानी सभी जगहों पर एक जैसी परिस्थितियां पाई जाती हैं।
4. वैज्ञानिक शोध और भौगोलिक वास्तविकता की वस्तुनिष्ठ व्याख्या में मानकीय प्रश्नों (सामाजिक मूल्यों आदि) के लिए कोई जगह नहीं है।
5. सांस्कृतिक मूल्यों, अभिवृत्तियों, विश्वासों, परंपराओं, रीति–रिवाजों, पसंद–नापसंद, पूर्वाग्रह और सौंदर्य संबंधी मूल्यों जैसे मानकीय प्रश्नों का भौगोलिक शोध और भौगोलिक प्रतिरूपों की वैज्ञानिक व्याख्या में कोई जगह नहीं है।

तीन उपागम, जिस पर मात्रात्मक क्रांति आधारित थी :–

1. अवस्थिति विश्लेषण, 2. स्थानिक विश्लेषण, 3. तंत्र विश्लेषण।

अवस्थिति विश्लेषण के अंतर्गत सांख्यिकीय एवं गणितीय तकनीकों, भौतिक नियमों आदि का प्रयोग करके इष्टतम अवस्थिति (जहाँ लागत न्यूनतम और लाभ अधिकतम हो) का पता लगाया जाता है। स्थानिक विश्लेषण भी अवस्थिति विश्लेषण के अंतर्गत आता है।

स्थानिक विश्लेषण स्थान ज्यामिति के रूप में पृथ्वी का अध्ययन है। इसमें स्थान (चंबम) के मापन और विभाजन शामिल हैं। स्थानिक विश्लेषण का मतलब ज्यामितीय विश्लेषण, दूरी का अध्ययन ओर सी.पी.टी की ज्यामितीय आकृति होता है।

तंत्र विश्लेषण के अंतर्गत किसी तंत्र के विभिन्न कार्यात्मक घटकों और उनके अंतर्संबंधों का अध्ययन किया जाता हैय जैसे– केंद्रीय स्थल सिद्धांत में विभिन्न पदानुक्रमित स्तरों पर विभिन्न बस्तियों के बीच संबंध।

मात्रात्मक क्रांति का विकास– यद्यपि मात्रात्मक क्रांति के प्रारंभ (1950 के दशक) से पूर्व छिटपुट रूप से भूगोल में मात्रात्मक विधियों का उपयोग किया जाने लगा थाय यथा– प्रथमतः, 1818–1915 की अवधि में वानथ्यूनेन का कृषि अवस्थिति मॉडल, वेबर का औद्योगिक अवस्थिति मॉडल, रेवेन्स्टीन का प्रवसन नियम आदि। द्वितीयतः,1915–1950 की अवधि में मार्क जैफर्सन का प्राइमेट सिटी कॉन्सेप्ट, जिफ का कोटि–आकार नियम, कुछ आर्थिक मॉडल आदि। तथापि मात्रात्मक क्रांति के विकास को चार चरणों में बांटा जा सकता है :–

प्रथम चरण (1950–1958)– 1950–58 के दौरान मुख्यतः संयुक्त राष्ट्र अमेरिका एवं कनाडा के भूगोलवेत्ताओं ने सांख्यिकीय विधियों का उपयोग प्रारंभिक रूप से शुरू कर दिया था। इस दौरान ब्रायन बेरी, हर्टन, डेविड हार्वे, नेल्सन आदि भूगोलवेत्ताओं ने अपने महत्वपूर्ण योगदान दिए। इस चरण में भूगोलवेत्ताओं द्वारा तीन विधियों का प्रयोग किया गया। प्रथमतः. प्राथमिक भौगोलिक आंकड़ों के संग्रहण के लिए 'निर्देशन विधि' का प्रयोग किया गया। द्वितीयतः, केंद्रीय मूल्यों को मापने की तीन विधियों– माध्य, माध्यिका और बहुलक का प्रयोग किया गया। तृतीयतः, मानक विचलन विधि एवं चतुर्थक विधि का प्रयोग किया गया। इन सांख्यिकी विधियों की मदद से

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-17, No.- I, Issues-31, YEAR- Jan.-March-2024

आंकड़ों का उपयोग भूमि उपयोग, कृषि उपयोग और नगर के क्षेत्र में किया गया। इस चरण में वीवर ने अमेरिका में 'फसल संयोजन सिद्धांत' दिया। ईस्ट ने अमेरिकी नगरों के लिए नगरों की आकारिकी पर काम किया। इस प्रकार, इन विधियों के प्रयोग से आंकड़ों को अधिक उपयोगी बनाया गया और इनसे भौगोलिक परिणामों की वैज्ञानिकता एवं भौगोलिक मानचित्रों की विश्वसनीयता में वृद्धि हुई।

द्वितीय चरण (1958–1968)– इस चरण में भूगोलवेत्ताओं द्वारा प्रथम चरण की अपेक्षा अधिक उन्नत सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया। द्वितीय चरण में एकरमान, स्पीयरमैन, चोर्ले, हैगेट आदि भूगोलवेत्ताओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिए। इस चरण में सहसंबंध एवं प्रतीपगमन विधियों का काफी उपयोग किया गया। इन दोनों विधियों में एक स्वतंत्र चर और दूसरा परतन्त्र चर होता है। ध्यातव्य है कि भूगोल के अध्ययन का आधार 'वातावरण–मानव सहसंबंध' है, जिसमें 'वातावरण' स्वतंत्र चर और 'मानव' एक परतन्त्र चर है। प्रतीपगमन विधि से स्कैटर मानचित्र की उपयोगिता में भारी वृद्धि हुई। द्वितीय चरण में ही चोर्ले एवं हैगेट ने सिद्धांत एवं मॉडल के विकास पर बल दिया। इन दोनों भूगोलवृत्ताओं ने नवीन मॉडल के विकास के लिए सांख्यिकी विधियों के प्रयोग को अनिवार्य बताते हुए 'भूगोल में मॉडल', 'भूगोल में भौतिक और सूचना मॉडल' और 'भूगोल में एकीकृत मॉडल' नामक किताबें लिखीं। इसके अलावा हैगेट ने 'मानव भूगोल में स्थानिक विश्लेषण' नामक किताब लिखी। इस चरण में अपनाई गई विधियों से भूगोल के आर्थिक तथा सामाजिक आंकड़ों के विश्लेषित परिणामों में पर्याप्त विश्वसनीयता आयी। इसके परिणामस्वरुप विकास तथा नियोजन में भूगोल की आवश्यकता महसूस की जाने लगी।

तृतीय चरण (1968–1978)– तृतीय चरण के दौरान अनेक जटिल गणितीय विधियों और कंप्यूटर का उपयोग किया गया। इस चरण में चोर्ले, हैगेट, एस्कॉट, मोसर, ब्रेसी इवांस आदि भूगोलवेत्ताओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन विद्वानों ने सिद्धांत एवं मॉडल के विकास के अलावा 'बहुचर विश्लेषण' तथा 'निकटतम पड़ोसी विश्लेषण' के उपयोग पर विशेष बल दिया। एस्कॉट तथा मोसर ने बहुचर विश्लेषण का उपयोग करते हुए ब्रिटिश नगरों का 'कार्यिक वर्गीकरण' प्रस्तुत किया। जबकि ब्रेसी इवांस द्वारा विकसित 'निकटतम पड़ोसी विश्लेषण' द्वारा अधिवासित बस्तियों के वितरण, दो बस्तियों के बीच औसत दूरी और उनके अंतर्संबंधों का पता चलता है।

चतुर्थ चरण (1978 से अब तक)– 1978 से वर्तमान तक के इस चरण में भूगोल में मानचित्रण के लिए, आंकड़ों के संग्रहण एवं विश्लेषण के लिए 'वायव फोटोग्राफ', 'दूर संवेदन' और 'भौगोलिक सूचना तंत्र' आदि तकनीकों का उपयोग होने लगा है। इन तकनीकों की मदद से आंकड़ों की विश्वसनीयता में अभिवृद्धि हुई है। उल्लेखनीय है कि वर्तमान समय में भूगोलवेत्ताओं द्वारा मुख्यतः 'बहुचर विश्लेषण विधि' का ही प्रयोग किया जाता है, परंतु इसके लिए कृत्रिम उपग्रहों से प्राप्त सूचनाओं को आधार बनाया जाता है। इन सूचनाओं का संग्रह कंप्यूटर में किया जाता है। साथ ही, इन सूचनाओं से अनेक सहसंबंधों का विश्लेषण होता है। इस संपूर्ण विधि को 'भौगोलिक सूचना तंत्र' (ळपै) कहा जाता है। यही सब कारण है कि अब भूगोल एक अंतर्विषयक विषय–वस्तु बन गया है, और नियोजन एवं विकास के क्षेत्रों में भूगोलवेत्ताओं के कार्यों में अभिवृद्धि हुई है।

मात्रात्मक विधितंत्र के गुण/लाभ– मात्रात्मक विधितंत्र के उपयोग से भूगोल को अनेक लाभ हुएय यथा–

1. मात्रात्मक तकनीकों की मदद से विभिन्न प्रकार के विश्वसनीय आंकड़ों एवं सूचनाओं का संग्रह एवं उनका वैज्ञानिक विश्लेषण आसान एवं संभव हो गया।
2. मात्रात्मक तकनीकें आंकड़ों के अनुमान, अंतर्वेशन और अनुरूपण (सिम्यूलेशन) में सहायता करती हैं, जो पूर्वानुमान के लिए आवश्यक है।
3. मात्रात्मक विधितंत्र के उपयोग से विभिन्न प्रकार के नियमों, सिद्धांतों एवं मॉडलों का निर्माण और भौगोलिक तंत्रों का विश्लेषण संभव हो सका।
4. मात्रात्मक विधितंत्र के प्रयोग से भगोलिक मानचित्र में गुणात्मक सुधार हुआ। साथ ही, भौगोलिक प्रदेशों के निर्धारण का कार्य अधिक सरल हो गया।
5. मात्रात्मक क्रांति के आगमन से सहसंबंधों का वैज्ञानिक एवं विश्वसनीय विश्लेषण संभव हो सका।
6. मात्रात्मक तकनीकें भाषायी मितव्ययता भी प्रदान करती हैं क्योंकि वैज्ञानिक गणितीय भाषा संक्षिप्तता एवं स्पष्टता के सिद्धांत पर आधारित है।
7. मात्रात्मक विधियों के प्रयोग से भूगोल की उपयोगिता में वृद्धि हुई है। वर्तमान में संसाधन सर्वेक्षण, बंजर भूमि सर्वेक्षण, वातावरणीय सर्वेक्षण, नगर नियोजन, प्रादेशिक नियोजन आदि के क्षेत्र में मात्रात्मक विधियों का प्रयोग विश्वसनीयता के साथ किया जा रहा है। इसके अलावा, जी.आई.एस. द्वारा उपलब्ध आंकड़ों का उपयोग बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा उद्योगों के स्थानीयकरण, माल परिवहन तथा विविध उत्पाद के वितरण से संबंधित निर्णय लेने के लिए किया जा रहा है।

मात्रात्मक विधितंत्र की कमियां– उपर्युक्त वर्णित लाभ के बावजूद मात्रात्मक क्रांति के आगमन से अनेक नई समस्याएं भी उत्पन्न हुईं। यही कारण है कि व्यवहारवादी एवं मानववादी दृष्टिकोण वाले भूगोलवेत्ताओं ने और कुछ प्रादेशिक भूगोलवेत्ताओं ने भी मात्रात्मक क्रांति की आलोचना की है। इन आलोचनाओं पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि मात्रात्मक विधितंत्र की कुछ कमियां एवं सीमाएं हैंय जो निम्नलिखित हैं –

1. मात्रात्मक विधितंत्र द्वारा विकसित सिद्धांतों एवं मॉडलों में आदर्शात्मक प्रश्नोंध्मूल्यों (जैसे– विश्वास, भावनाएँ, अभिवृत्ति, इच्छाएं, आशाएं, भय, पसंद–नापसंद, सौंदर्यपरक मूल्यों आदि) पर विचार नहीं किया गया है। जबकि मनुष्य के निर्णय पर आदर्शात्मक प्रश्नों का बहुत प्रभाव होता है, उदाहरणार्थ– भारत के उत्तर–पूर्व में सी (मेघालय) और लुशाई जातियों में डेयरी व्यवसाय का विकास नहीं हो पाया है क्योंकि इन जातियों में दूध का सेवन करना वर्जित माना जाता है। इसी प्रकार, संपूर्ण विश्व में मुस्लिम जाति के लोग सूअर

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-17, No.- I, Issues-31, YEAR- Jan.-March-2024

पालने से नफरत करते हैं और सिक्ख तंबाकू की कृषि करना पसंद नहीं करते हैं। ध्यातव्य है कि आदर्शात्मक मूल्यों को अलग किए जाने से विषय वस्तुनिष्ठ हो सकता है किंतु यह मानव और पर्यावरण संबंधों का केवल सीमित चित्र ही उपस्थित करता है।

2. मात्रात्मक क्रांति प्रत्यक्षवाद के सिद्धांत पर आधारित है। प्रत्यक्षवाद का कहना है कि यदि वैज्ञानिक निष्कर्ष के द्वारा किसी चीज का मूल्यांकन किया जा सकता है तो वह सत्य के करीब है। जबकि मार्क्सवाद का मानना है कि यदि हम गणित और विज्ञान का उपयोग करते हैं तो वह पूँजीवाद के ज़्यादा करीब है। पूँजीवाद समाज में मानव और पर्यावरणीय संसाधनों (भूमि, जल, वन, खनिज) का शोषण किया जाता है जो धनी को और अधिक धनी और निर्धन को और अधिक निर्धन बना देता है।

3. मानववादी भूगोलवेत्ताओं ने मात्रात्मक विधि तंत्र की आलोचना करते हुए इसे 'यंत्रीकृत अध्ययन' बताया और कहा कि इसमें मानवीय दृष्टिकोण की अवहेलना हुई है। मानवतावादी कहते हैं कि वातावरण और मानव के संबंध को गणतीय रूप से नहीं व्यक्त किया जा सकता हैय अर्थात गणित, सांख्यिकी या कंप्यूटर के उपयोग के द्वारा मानव और वातावरण के संबंध की व्याख्या नहीं हो सकती है।

4. मात्रात्मक विधितंत्र में विशिष्ट आंकड़ों की जरूरत होती है जो विकासशील देशों में मुश्किल से ही उपलब्ध हो पाता है। इस प्रकार की अपूर्ण आंकड़ों से प्राप्त निष्कर्ष भौगोलिक वास्तविकता का गलत चित्रण ही प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार, स्पेट का मानना है कि सामान्यतः भूगोलवेत्ताओं में सांख्यिकी योग्यता का अभाव होता है, अतः उचित सांख्यिकी विधियों के चयन और विश्लेषण में गलतियाँ हो सकती हैं।

निष्कर्ष– मात्रात्मक क्रांति ने भूगोल के स्वरूप को परिवर्तित किया है। मात्रात्मक उपागमधविधितंत्र के उपयोग ने भूगोल को और अधिक वैज्ञानिक, विश्वसनीय, गत्यात्मक और उपयोगी विषय बना दिया है। भूगोलवेत्ताओं को चाहिए कि वे इस विधितंत्र के उपयोग के समय विधि का चयन अधिक गंभीरता से करें और परिणामों की विश्वसनीयता की भी जांच करें। यदि आवश्यक हो तो अन्य नवीन उपागमों का प्रयोग कर परिणाम की जटिलता को समाप्त करने की दिशा में कार्य करें। वस्तुतः भूगोल का चरित्र मात्र मात्रात्मक भी उचित नहीं है और न ही गुणात्मक। अतः गुणात्मक और मात्रात्मक– दोनों चरित्रों के समन्वय से ही भूगोल को एक सही दिशा और नया आयाम मिल सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Schaefer, F. (1953), Exceptionalism in Geography Annals, Ass. Am. Geographers Vol. 43.
2. Ackerman, E. (1958), Geography as a Fundamental Research Discipline, University of Chicago Res Pa per No. 53.
3. Chorley, R.J. & Jagger, P. (Eds.) (1967), Integrated Models in Geography, Methuen, London.
4. Pres, A. (1967), Behaviour and Location : Foundations for a Geographic and Dynamic Location Theory Part 2, Gleemp, Lund.
5. Harvey, D. (1969), Explanation in Geography, Edward Arnold London.
6. Chorley, R.J. (Ed.) (1973), Directions in Geography, Methuen London.
7. Peet, R. (Ed) (1978), Radical Geography, Methuen London.
8. Dikshit, R.D. (1997), Geographical Thought : A Contextual History of Ideas, New Delhi : Prentice - Hall of India.
9. Singh, J. (2001), Bhaugolik Chintan ke Muladhar, Gyanoday Prakashan

*****